शुभारंभ

ओमा शर्मा

हिन्दी ADDA

शुभारंभ

https://www.hindiadda.com/shubharambh/

उसके तुरंत बाद ही जैसे सब कुछ बदल गया। मुझे लगा जैसे कोई जहरीला साँप धीरे-धीरे या तो मुझे निगल रहा है या मेरे अंदर उतर रहा है। चंद क्षणों पहले और अबकी मेरी हालत में गुणात्मक बदलाव आ गया। जैसे कोई दीवार गिर गई हो और मेरा पैर उसके मलबे में बुरी तरह फँस गया हो।

गड्डी को पूरी होशियारी और तसल्ली से पकड़कर मैंने दराज में डाल दिया। डाल तो दिया, लेकिन मेरी धौंकनी ने क्या जोर से फड़फड़ाना शुरू किया! एक बारगी तो लगा कि तुरंत ही चपरासी कोई फाइल खोजने के बहाने मेरी ड्रॉअर को खींचेगा और पलभर में ही मुझे निर्वस्त्र कर देगा। क्या कर लूँगा मैं उसका क्या इज्जत रह जाएगी मेरी वह अब तक जो वजह-बेवजह मेरा गुणगान करता फिरता था कि उसका साहब बहुत 'राजा आदमी' है और गलत पैसे को हाथ लगाना तो दूर, देखता तक नहीं है, अब क्या-क्या नहीं कहेगा उम्रभर की पूँजी, चंद कागजों की वजह से इस कदर गुड़-गोबर हो जाएगी।

मैंने तुरंत घंटी मारी और चपरासी को पानी लाने को कहा। दरअसल मैं चाह रहा था कि गड्डी को दराज से निकालकर किसी गंदी-सी फाइल के बीच खोंस दिया जाए। कोई शक ही नहीं कर पाएगा। लेकिन उससे क्या होगा मेरे बॉस ने किसी कारणवश वही फाइल मँगा ली तो! यूँ भी बड़ा शक्की और ज्यादा झक्की आदमी है। पता नहीं किस-किस तरह के लोगों से उसका पाला पड़ा है। कोई दलील भी नहीं सुनेगा। क्यों सुने!

मणीलाल पानी ले आया। इस बीच मैं जो करना चाह रहा था, असमंजस में कर ही नहीं पाया। बौखलाहट में पानी गटकते हुए कनखियों से चपरासी को देखा। लगा, वह कमरे का मुआयना-सा कर रहा है। तो क्या इसे भनक लग गई है कहीं ऐसा तो नहीं कि उसने सौ-पचास रुपए इसे भी थमा दिए हों कि ले तेरे साहब को वहाँ खुश कर दिया, तू यहाँ खुश रह। मेरा सोचना कोई गलत कहाँ है, ऐसे आदमियों की कमी है क्या! उस दिन वकुल ही तो कह रहा था कि परमार को जिस आदमी ने पैसे दिए थे, अब पूरे विभाग में बताता फिरता है कि साहब परमार साहब तो बहुत शरीफ आदमी हैं... बहुत सस्ते में ही छोड़ देते हैं। और क्या कह रहा था वकुल... अरे हाँ, कि कोई आदमी पैसे देता है तो उसका प्रचार तो करता ही है। लेने वाला चाहे कभी न माने, पर जो अपनी जेब से खर्च करेगा, वह तो गाएगा ही। कहीं ऐसा तो नहीं कि यहीं बाहर खड़ा सलूजा सबको डंके की चोट पर ऐलान करके बता रहा हो कि भाइयो आज, अभी-अभी मैं दीक्षित साहब को दस हजार देकर आ रहा हूँ। न मानो तो आप अंदर जाकर...

मैंने हलक से पानी उतारकर मणीलाल को बाहर जाने का आदेश दे दिया और फिर सोचने लगा कि इस मुसीबत से कैसे छुटकारा मिले। ऐसा भी हो सकता है कि मणीलाल उसके मुँह से ही आँखों देखा हाल सुन रहा हो। ऐसा करता हूँ कि इस मणीलाल को किसी काम के बहाने यहाँ से चलता करता हूँ। वैसे भी उसके लिए मेरे पास कौन सा काम पड़ा है लेकिन बाहर भी तो किसी न किसी को रहना पड़ेगा। कम से कम मैं उससे फिलहाल यह तो करा ही सकता हूँ कि बाहर से किसी को भी घंटे आधे घंटे अंदर न आने दे और तब तक मैं इस गड्डी को ठिकाने लगाने का रास्ता निकालता हूँ।

मुझे दूसरा डर यह भी लग रहा है कि ज्यों-ज्यों समय निकल रहा है, मुसीबत और अधिक उग्र होती जा रही है। मुझे पूरा यकीन है कि सी.बी.आई. वालों को वह साथ ही लाया होगा और किसी भी क्षण गवाहों सहित पुनः प्रवेश करने को होगा। गड्डी को देखकर तो वैसे लग भी रहा है कि नोट नए-नए और बाकायदा ऐसे ही हैं जैसे किसी जाल के तहत इस्तेमाल किए जाते हैं, लेकिन यह मैंने क्या किया मैंने तो उन्हें छूकर उठाकर भी रख दिया। यानी अब तो वह अदृश्य पाउडर भी मेरे पोटुओं में लग गया होगा, जिसे किसी घोल में डाल देने से रंग लाल हो जाता है। यदि इसी वक्त सी.बी.आई. वालों की टीम दनदनाती मेरे कमरे में घुस आए और मेरा टैस्ट कर ले तो मुझे भगवान भी नहीं बचा सकता। सारे विभाग में खबर फैलेगी। सरकार फौरन निलंबित करेगी और सामाजिक-पारिवारिक अपमान तो बेहिसाब होगा ही। मैं यह सब कहाँ सहनकर पाऊँगा नीलू नहीं बता रही थी उस रोज कि उसके एक परिचित के अंकल बारह सौ रुपए लेते पकड़े गए थे। रँगे हाथ। मोहल्ले समाज में ऐसी रस-मिठास लेकर उनकी चर्चा होती कि परिचित मित्रों के सामने पड़ने से भी कतराते। बच्चों ने ग्लानिवश आस-पड़ोस में भी निकलना बंद कर दिया। तीन वर्ष तक केस कोर्ट में खिंचता रहा। थककर, निराशा में आत्महत्या की असफल कोशिश कर डाली। किसी तरह बच तो गए, पर अर्ध मानसिक रोगी तो स्थायी रूप से ही हो गए। हे राम, अगर मेरे साथ कुछ ऐसा ही बन गया तो नीलू का क्या होगा?

अच्छा ऐसा करता हूँ कि सहज और सामान्य होकर बाथरूम चला जाता हूँ और वहाँ पर साबुन से हाथ धो डालूँगा। यह करना तो एकदम जरूरी है। कम से कम रँगे हाथों तो नहीं पकड़ा जाऊँगा। बाद में जो होगा, होता रहेगा। अरे, जब आदमी को रँगे हाथों पकड़ा ही नहीं गया तो कोई भी अदालत बहुत ज्यादा सख्त रवैया नहीं अपना सकती है। पकड़े जाने पर तो कुछ हो ही नहीं सकता। धवन अंकल भी कुछ नहीं करा सकते

हैं। सी.बी.आई. का चक्कर बहुत बुरा होता है। सब अपनी जान बचाते हैं। दूसरे की आई में कोई नहीं पड़ता।

मैंने तुरंत, आहिस्ता उठकर सोपकेस निकाला और बराबर में रख लिया। उठकर दरवाजे तक पहुँचा ही था कि खयाल आया कि यह मैं क्या करने जा रहा हूँ सी.बी.आई. के लोग यदि बाहर ही घात लगाए, जाल बिछाए खड़े हों तो मैं बेमौत मारा जाऊँगा। सुना है बड़ी मक्कारी और बेअदबी से काम करते हैं। जरूरत पड़ने पर उनका एक इंस्पेक्टर भी बड़े से बड़े अफसर को तमाचा जड़ देता है और फिर वहाँ बाथरूम में ही कोई इंस्पेक्टर प्रतीक्षारत तैनात हो तो...!

मेरा दिमाग अब सचमुच काम नहीं कर रहा है। मुझे स्वयं ही पता नहीं है कि मैं क्या करना चाहता हूँ। यह करूँ या वह करूँ। करूँ भी कि न करूँ। इसी को तो कहते हैं विनाश काले विपरीत बुद्धि।

तभी बराबर में रखा फोन टनटना गया। किसका होगा - बॉस का तो नहीं है, हो सकता है सलूजा का बच्चा कमरे से निकलते ही सीधा बॉस के पास गया हो, सब उगल डाला हो। बॉस की त्योरियाँ चढ़ गई होंगी, तभी उसने फोन किया है। क्या जवाब दूँगा मेरी मानसिक हालत वैसे भी संतुलित नहीं है। कुछ अंट-शंट निकल गया तो...'नहीं, नहीं सर, मैंने नहीं माँगे...' नहीं यह नहीं... वह फड़ाक से कहेगा; 'मैं माँगने या न माँगने की बात नहीं कर रहा मिस्टर कमलकांत दीक्षित... यह बताइए कि आपने लिए या नहीं। झूठ बोलकर 'ना' कह भी दूँ तो सीधा मेरे कमरे में चढ़ा चला आएगा। वह मनहूस सलूजा तो साथ होगा ही। मेरा कमरा है ही कितना बड़ा। फौरन खोज निकालेंगे। 'हाँ' कहकर हो सकता है वह मेरी सादगी को कुछ ऐप्रिशिएट करे...'

मैंने झपट्टा-सा मारकर, धड़कते दिल से ही फोन उठाया और ऐसे कृत्रिम संतुलन के साथ 'हेलो' बोला जैसे काम की व्यस्तता में खुद को भूला हुआ था। नाहक ही फोन ने डिस्टर्ब किया। उधर वकुल था।

'क्या हो रहा है भई' उसने हमेशा की तरह हल्की हँसी बिखेरकर पूछा।

क्या कहूँ... कह दूँ कि यार जरा देर के लिए मेरे पास आ जा। इन नोटों को मेरे पास से ले जा और मेरी जिंदगी बचा ले।

'कुछ नहीं यार, बस यूँ ही रूटीन वर्क...'

'तुमने कुछ सुना' उसने थोड़ा रहस्य-सा अपने आपमें समेटने की कोशिश की। सुना नहीं बाबा, मेरे साथ ही हुआ है। कोई और नहीं मैं ही था। बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी मेरी। साफ-साफ बता देता हूँ उसे। दोस्त है। उसकी निगाह में थोड़ा गिर भी जाऊँगा तो क्या हुआ, जमाने भर की जिल्लत से तो छूट जाऊँगा। और फिर उसके भी तो कई राज मेरे पास गुप्त हैं। कभी आजमाइश करेगा तो भुगतेगा भी।

'किस बारे में' मैंने आशंकित भाव से पूछा।

मैं सोचने लगा, इसे पता चाहे लग गया हो, पर सब कुछ थोड़े ही पता होगा... किसने दिए, कितने दिए, क्यों दिए, उसे क्या पता। वह सलूजा का बच्चा अपनी तरफ से मुझे लाख बदनाम करे, मेरे वक्तव्य की भी तो कोई अहमियत होगी। सब उसी की ही थोड़े ही सुनेंगे। ताली दोनों हाथों से बजती है। रिश्वत लेना अपराध है तो देना भी तो है।

'मोहन्ती का ट्रांसफर यहीं हो गया है।' वकुल ने एक मिनट पहले छुपाए रहस्य का पर्दाफाश किया।

जान में जान आई। यानी ऐसा-वैसा इसे कुछ मालूम नहीं है, जिसका अंदेशा था।

'इस वक्त!' मैंने हैरत से पूछा। शायद कहना यह चाह रहा था कि इस वक्त यह बात बताने के लिए तुझे मैं ही मिला हूँ रे बावले। यह वकुल भी अजब है। जब फुर्सत मिलती है, फोन खटका देता है।

'दरअसल उसकी वाइफ तो पहले से ही यहाँ थी। सेंट्रल स्कूल में पढ़ा रही थी ना (इस ना के साथ-साथ मैंने समानांतर हाँ-हाँ की), वही बेचारा इंदौर में अटका पड़ा था।' उसने थोड़ी हमदर्दी जताते हुए वाक्य पूरा किया। लगा, मैं व्यर्थ ही इस बातचीत में कीमती वक्त जाया कर रहा हूँ। उधर मेरे खिलाफ एक नियोजित साजिश मुँह बाए खड़ी है और मैं इस बौड़म के साथ फोन से चिपका हुआ हूँ। ऐसा करता हूँ कि फोन काट देता हूँ। बाद में कह दूँगा लाइन ही कट गई थी। क्रेडल उठाकर अलग रख देता हूँ। आगे के लिए भी बला टलेगी।

'कब ज्वाइन कर रहा है' मैंने बेमन से पूछा। और फिर तो जैसे एक चमत्कार ही हो गया। वकुल ने माफी माँगते हुए कहा, 'अभी, रखता हूँ यार, जरा बॉस ने बुलाया है। लंच पर मिलते हैं।'

'अब क्या किया जाए नीलू ही आ जाए कहीं से। वैसे भी तो वह कितनी बार, बिना बताए, अचानक बैंक से सीधे मेरे दफ्तर आ धमकती है। लेडीज के पास तो अपनी ही

सुरक्षा पेटी होती है। सारी समस्या ही सुलट जाएगी। मैं आते ही, उसे गड्डी पकड़ाकर, आँखों के इशारे से वापस भेज दूँगा। घर जाकर जो भी भला-बुरा कहेगी, सुन लूँगा। है तो अपनी बीवी। उससे क्या शर्म। अरे सुख-दुख के ही तो साथी होते हैं पति-पत्नी और वैसे भी इन रुपयों का उपयोग तो ज्यादातर उसके लिए ही करना है। कितने दिनों से एक पैंडेंट की माँग कर रही है। मैं भी कैसा आदमी हूँ। बेचारी को सुहागरात के दिन भी कोई तोहफा नहीं दिया था। 'मुझे पता ही नहीं था और न किसी ने मुझे सुझाया ही।' कहकर मैंने हल्के अपराधबोध के साथ 'ही-ही' कर दिया था। 'सब हसबैंड्स देते हैं।', उसने शांत मगर बुझे स्वर में कहा था। 'चलो ऐनीवरसरी के समय दिला देंगे।' उसे पता था तब भी मैंने 'दिला देंगे' कहा था यानी उसके और अपने पैसों को जोड़-जाड़कर। खालिस अपनी तरफ से कुछ नहीं। अब सब कुछ ठीक हो सकता है। अरे पैंडेंट चाहे आए न आए, पहले यह गड्डी तो यहाँ से खिसके!

दरअसल गलती मेरी ही थी। अवचेतन में क्या मैं नहीं सोचता रहता था कि कहीं से कुछ 'जुगाड़' हो जाए तो क्या बात हो। माँ के लिए एक दो बढ़िया कॉटन की साड़ियाँ खरीदवा दूँ। पिताजी के लिए एक-दो अच्छे सफारी सूट सिलवा दूँ। घर के ड्राइंगरूम को, कुछ अतिरिक्त पैसे मिलने पर, थोड़ा ढंग का कर लूँ और कुछ नहीं तो अपनी पसर्नल लाइब्रेरी में कुछ क्लासिक्स या मास्टरपीस ही सुशोभित हो जाएँ। इस बँधी-बँधाई तनख्वाह में कोई क्या-क्या करे

इसी चिरकुट उड़ान का ही तो फल अब जी भर के मिल रहा है।

मेरा निर्णय-दुर्बल होना ही तो मुझे महँगा पड़ रहा है। उसके गड्डी को निकालते ही मुझ बरस पड़ना चाहिए था। कड़क होकर दहाड़ता उस पर कि अबे ओ लाला को औलाद, तूने हर आदमी को गिरा हुआ और बिकाऊ समझ रखा है। चुपचाप शराफत से वापस रख ले अपनी अमानत को और दफा हो जा, नहीं तो हवालात की सैर करनी पड़ जाएगी।

लेकिन हुआ कुछ और ही।

'इस सबकी कोई जरूरत नहीं है,' मैंने शालीनता से कहा। कहने के साथ ही कुछ बड़प्पन का अहसास हुआ।

'मैंने कब कहा जरूरत है या इनसे आपका कुछ होनेवाला है दीक्षित साहब। हम यह अपनी खुशी और दिल से कर रहे हैं।' सलूजा मंद-मंद मुस्कराता रहा और गड्डी को मेरी तरफ खिसकाता रहा।

'देखिए, आप मुझे औरों जैसा मत समझिए... मैंने जो भी किया है, बिना किसी मोटिव...' मैंने सफाईवश, गड्डी को बिना खिसकाए हाथ से सटाते हुए कहा, मगर उसने बीच में ही कुतर डाला।

'कैसी बात करते हैं दीक्षित साहब... क्या इंसान के व्यवहार से उसकी नीयत का पता नहीं चल जाता है। प्रैक्टिस के इतने दिनों बाद आदमी-आदमी की कुछ तो समझ हमें भी हो गई है।' उसने मुझे आश्वस्त किया था।

'फिर भी, पता नहीं क्यों, कुछ ठीक-सा नहीं लगता।' मैंने लगभग निढाल होकर कहा।

चाल लगता है उसके हाथ आ गई थी।

'आप इसे किसी बोझ-बोझ के रूप में न लें। लक्ष्मी है। हाथों का मैल है। कोई आपका दाम थोड़े ही है। आप चाहें तो क्या नहीं कर सकते...' और फिर अपनी पलकों को मोहक अंदाज में मूँदकर, लगभग रिरियाते हुए कहा,

'खुशी से कर रहे हैं, थोड़ा हमारा भी मान रखिए।' कहकर वह उठ खड़ा हुआ। फुर्ती से मिलाने को हाथ बढ़ाया और 'अब चलूँगा, कोई काम हो तो बताइएगा', कहकर पलभर में ही नदारद हो गया।

लेकिन मेरे अब पछताने से कोई लाभ जो होना था, हो गया। मैंने अपने आपको बेच ही दिया समझो, उसकी चला का शिकार बन ही गया, पर उससे निकलने का कोई न कोई उपाय तो होगा। होगा, होगा क्यों नहीं। मैं तो किसी को अपशब्द भी नहीं कहता। ईश्वर क्या यह सब नहीं देखता है। ठीक है उसने मुझसे एक गलती करवाई, पर उससे निजात भी तो वही दिलवाएगा। मैं कहता हूँ ईश्वर है और हर जगह है। वही सबकी परीक्षा लेता रहता है। हरेक के कर्म का लेखा-जोखा रखता है। मैं तो जब भी ट्रेन में सफर करता हूँ, शायद ही किसी अपाहिज या गरीब बच्चे को खाली हाथ जाने देता हूँ। अरे, इन दीन-हीनों की मदद करने से जो सुकून मिलता है, वह कितना अद्‌भुत और अलौकिक होता है। भूखी निगाहों को जब कुछ मिल जाता है तो बेचारे कितने तहे-दिल से दुआ देते हैं। मुझे तो आज तक कितनी ही दुआएँ मिली होंगी। क्या कोई भी दुआ आज काम नहीं आएगी प्रभु, बस आज रहम कर दो। आगे से तो कभी सोचूँगा भी नहीं और इन पैसों को भी जितना होगा, गरीबों में बाँट दूँगा। 'जितना' क्या सारा का सारा ही। हो सकता है, प्रभु ने इसीलिए यह सब किया हो।

पंद्रह मिनट से भी ज्यादा समय हो गया है और मैं अभी तक कुछ भी नहीं कर पाया हूँ। सिर भन्नाए जा रहा है। वो तो गनीमत है कोई मेरे कमरे में आया नहीं है। आ जाए तो मेरी हालत देखकर क्या-क्या नहीं सोचेगा। हवाइयाँ उड़ रही हैं। टेंशन से मेरी जुबान यकबयक वैसे ही लड़खड़ाने लगती है।

मुझे इसी वक्त कुछ हो जाए तो हाल-चाल देखने के बहाने दस लोग कमरे में घुसेंगे। गड्डी देखकर किसी को शक हो ही नहीं सकता कि यह सिर्फ घूस खाने से आए हैं। मेरा चाहे हार्ट फेल हो रहा होगा, फिर भी दया या सहानुभूति मेरे प्रति कोई नहीं करेगा। उल्टे सब मेरे दोगलेपन पर स्तब्ध और भौंचक्के होंगे।

'बनते तो बहुत आदर्शवादी और ईमानदार थे... कैसे लेक्चर पिलाया करते थे कि आवश्यकताओं की कोई सीमा नहीं होती है... अरे उन लोगों के बारे में सोचो जो बेरोजगार हैं और पाँच-पाँच सौ रुपए की नौकरी के लिए दर-दर भटकते हैं... गलत पैसा कुछ न कुछ गड़बड़ी तो जरूर करता है और पता नहीं क्या-क्या अनाप-शनाप मेहता गिलगिलाकर कहेगा।

'मैं विश्वास नहीं कर सकता कि दीक्षित साहब भी, एकदम गऊ जैसे दिखते थे। हमेशा शांत और विनम्र। कार्यशील और मृदु।' सिल्वराज विस्मित होकर कहेगा।

उस रोज एक सज्जन ने किसी समारोह में एक सवाल कर लिया था मुझसे, 'दीक्षित साहब, थोड़ा बहुत व्यवहार तो आपके यहाँ भी चलता होगा...।' 'व्यवहार' और 'आपके यहाँ' गहरी, मगर मतलबी रहस्यमयता और बेबाकी लिए हुए थे, 'आपके यहाँ' से अभिप्राय था 'आप' यानी मैं और 'व्यवहार' से मतलब यानी वही सब जो इस समय मेरी छाती पर किसी साँप की तरह लेटा हुआ है।

सिल्वराज ने हस्तक्षेप करने का दुस्साहस कर डाला था।

'मेहता साहब, यह सवाल आप एक ऐसे आदमी से कह रहे हैं जिसे 'उस तरफ' की दुनिया के बारे में कुछ मालूम ही नहीं है। हमारे दीक्षित साहब उस विलुप्त होती हुई प्रजाति के हैं, जिनके बारे में पूरा विभाग फख्र करता है।' मेहता को टका-सा जवाब देकर सिल्वराज ने मुझे देखा था - गर्वित और उपलब्धिपूर्ण दृष्टि से। मैं जमीन से कई इंच ऊपर उठ गया था। न मेहता के प्रश्न का उत्तर दिया, न शालीनतावश सिल्वराज के स्पष्टीकरण का समर्थन। हाँ, उस समय अंदर कुछ अवश्य हिल रहा था। उर्दू में शायद इखलाख इसी को कहते हैं।

कितना भोला है सिल्वराज भी। उसे अपनी समझ और परख, दोनों के बारे में काफी पुनर्विचार करना पड़ेगा।

मुझे लग रहा है छाती के नीचे वाले हिस्से में हल्का सा कंपन हो रहा है। कहीं हार्ट-अटैक जैसा तो कुछ नहीं पहले कभी हुआ नहीं, पर हो तो सकता है। आजकल तो कहते हैं पेनलैस हार्ट-अटैक आम हो गए हैं। जब तक पता लग पाता है, तब तक आदमी का बहुत कुछ हो चुका होता है। मैं तो वैसे भी कभी-कभार सिगरेट के कश लगा लिया करता हूँ।

ऐसा करता हूँ किसी दर्द का बहाना बनाकर मणीलाल को कहकर, गड्डी को यहीं छोड़कर चला जाता हूँ। चैंबर लॉक कर दूँगा। अगर कल तक कुछ नहीं हुआ तो नोटों को चूहे थोड़े ही कुतर देंगे। किसी अच्छे डॉक्टर से भी मिल लेता हूँ। कह दूँगा अंदर दर्द उठ रहा है, जो थोड़ी देर बाद शांत हो जाता है और फिर उठने लगता है। यह दर्द, हो सकता है मेरा वहम हो, पर डॉक्टर कोई खुदा तो नहीं कि समझ जाए कि मैं उसे उल्लू बना रहा हूँ। दो-चार दवाएँ यूँ ही लिख मारेगा। कल कोई दफ्तर में पूछेगा भी तो मैं डॉक्टर और उसकी दवाओं का हवाला देकर आराम से जस्टीफाई कर दूँगा। अरे, दफ्तर क्या कोई जान से भी ज्यादा जरूरी है या फिर पूरी दुनिया में मैं ही सबसे जघन्य अपराधी हूँ क्या? लोग तो पता नहीं कितना और रोज ही खाते हैं और डकार तक नहीं लेते। अब तो मापदंड ऐसे बनते जा रहे हैं कि खाओ तो जमकर। पाँच लाख, दस लाख। यह क्या कि पाँच-दस हजार के लिए ही समझौता कर लिया। बड़ी राशि लेकर पकड़े भी जाओ तो कोई हिकारत से नहीं देखेगा। बस हाजमे के बारे में दो-चार बातें जरूर उठेंगी।

पर पकड़े जाओ तो दो हजार क्या और दो लाख क्या। सबका गंतव्य एक ही है।

अभी लंच होने में भी डेढ़ घंटा बाकी है। अपने संगी-साथियों से बतियाकर कुछ तो मानसिक राहत मिलेगी। पी.के. तो मेरे चेहरे को देखकर एकदम जिद कर बैठेगा कि मैं तुरंत घर चला जाऊँ। नीलू को बैंक में इन्फार्म करेगा सो अलग।

पता नहीं, क्या सोचकर मैंने घंटी बजा डाली। मणीलाल हौले से घुसकर आदेश की प्रतीक्षा करने लगा। मुझे कोई काम तो था नहीं। मैं तो बस इतना ही जानना चाह रहा था कि बाहर ही बैठा है या जो हलचल-हंगामा बाहर हो रहा होगा, उसमें लीन है। मैंने किसी मनोचिकित्सक की तरह उसे गौर से देखा, पर उसका चेहरा भावहीन था। जरूर ऊँघ रहा होगा बैंच पर बैठा-बैठा। क्या काम दूँ इसे।

'ऐसा करो जरा...' कहते-कहते मैं अटक गया।

'जी...' उसने आतुर भाव से, विनम्रतापूर्वक गर्दन आगे लपकाई।

'वकुल साहब के पास से आज का अखबार ले आओ।' मैंने निर्व्याज कहा।

मणीलाल दरवाजा भेड़कर निकला ही होगा कि नोटों का वह मनहूस पिटारा मेरी लरजती-पसीजी उँगलियों में सरक आया और किसी करिश्मे की तरह गीता के श्लोकों का स्मरण दिलाता हुआ मेरे ब्रीफकेस में समा गया।